हिन्दी चलचित्र (सिनेमा) की भाषा

डा. पल्लवी भूदेव पाटिल
हिन्दी विभागाध्यक्षा,
राजर्षि शाहु (स्वायत्त) महाविद्यालय, लातुर

निश्चित चलचित्र (सिनेमा) एक आधुनिक दृक-श्रव्य विधा है। समाज, साहित्य और चलचित्र (सिनेमा) इन तीनों का एक-दूसरे से अनुबन्ध है किन्तु जब हम साहित्य की परिभाषा को देखते हैं- ''साहित्य भावः साहित्यम्।' (अर्थात्- केवल हितकर भावों को बताना ही 'साहित्य' है।) अहितकर, अमंगलदायी या बाजारु भावों के लिए साहित्य का निर्माण नहीं हुआ है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। साहित्यकार समाज की घटनाओं से प्रेरित अपने पात्रों का गठन करता है और रचनाओं का सृजन करता है। कबीर से निराला तक और गजानन माधव मुक्तिबोध से लेकर चन्द्रकान्त देवताले तक सभीं ने समाज को दृष्टि और बोध देने का काम किया है। साहित्य मनुष्य के वैचारिक प्रक्रिया की देन है। साहित्य लाभ-हानी के लिए गठित नहीं किया जाता है। सात्यिकार के लिए सृज़न अर्थात् अपनी अस्वस्थाओं से मुक्ति है। अपनी बैचेनी से छुटकारा ही सृज़न है। अन्याय के विरोध में क्रोध ही सृज़न है। साहित्यकार जब उस निर्माण की प्रक्रिया से गुज़र रहा होता है तब उसके ही द्वारा निर्मित पात्र उसके इर्द-गिर्द मँड़राते हैं और कभी-कभी तो साहित्यकार के सामने आकर चुनौति देते हैं। साहित्यकार तब तक लिखता है जब तक कि उसका बोध वह पूर्णतः पाठक को सौंप न दें। फिर बात जीवन मूल्यों की हो, आदर्शों की हो या भाषा की हो ।

साहित्यिक भाषा बुध्दि को प्रेरित करती है। सामाजिक स्तर से साँझा बनाए रखती है। कबीर के दोहे पन्द्रहवी शताब्दि में लिखे गए। किन्तु आज सन् २०१८ में शताब्दियों को बाद में अपने छात्र-छात्राओं को कबीर पढ़ा रही हूँ, क्योंकि उनकी रचनाएँ अन्याय को ललकारती हैं तथा सामाजिक सरोकार बनाए रखती हैं। महादेवी वर्मा जो 'आधुनिक मीराँ' कही जाती हैं उनका दुख की बदली का रहस्यवाद अद्भुत है। मन्नु भण्ड़ारी स्वयं इस बात को बताती हैं- ''मेरे शुरूआती कहानियों के सारे पात्र अजमैर, ब्रह्मपुरी मुहल्ले से हैं। उनकी 'अकेली' कहानी की नायिका 'सोमाबुआ' उनके बचपन में उनके घर रहनेवाली नानीसाहब की है। साहित्यकार जब उस निर्माण की प्रक्रिया से गुज़र रहा होता है तब उसके ही द्वारा निर्मित पात्र उसके इर्द-गिर्द मँड़राते हैं और कभी-कभी तो साहित्यकार के सामने आकर चुनौति देते हैं। साहित्यकार तब तक लिखता है जब तक कि उसका बोध वह पूर्णतः पाठक को सौंप न दें। फिर बात जीवन मूल्यों की हो, आदर्शों की हो या भाषा की हो । याद दिलाती है। मोहन राकेश भी कहते हैं कि जब वे नाटक लिाते हैं तो 'डायलॉग इन ड्रीम्ज' की अवस्था को महसूस करते हैं। स्वदेश दीपक का 'कोर्ट मार्शल' हाशिए के समाज का प्रतिनिधित्व करता है। नि-सन्देह साहित्यकार की दृष्टि उसकी सृज़न का आधार है। साहित्यकार विचारों के प्रति प्रतिबध्द होकर लिखता है। इसलिए उसके संवाद (भाषा) समाजहितैषी होते हैं। सिनेमा का भी अपना एक प्रदीर्घ इतिहास है। चलचित्र महर्षि दादासाहब फालके हिन्दी चलचित्र (सिनेमा) के प्रवर्तक माने गए हैं। उनके द्वारा बनी 'राजा हरिश्चन्द्र' हिन्दी सिनेमा जगत् की पहली फिल्म है जिसमें न आवाज़ थी और संवाद लिखकर बताए गए थे। भाषा लेकर फिल्म में उतनी सक्रियता पहले थी ही नहीं। लेकिन 'तत्पश्चात् फिल्मो या सिनेमा में भाषा रंगमंच द्वारा आई' ऐसा कहा जाए तो गलत न होगा । पृथ्वीराज कपुर रंगमंच से जुड़े कलाकार थे। उनकी बुलन्द आवाज़ तथा ऊर्दू भाषा को उस वक्त सिनेमा की भाषा के रूप में देखा जाने लगा। उस जमाने में प्रदीप जैसे कुछ कवि फिल्मों के लिए गीत की रचना कर हिन्दी साहित्य का प्रबल समर्थन कर रहे थे। राजकुमार फिल्मों में समर्पण की भूमिका को लेकर आए। अपनी मेहनत से उन्होंने 'आवारा', श्री ४२० जैसी फिल्मों का निर्माण किया। यदि आप देखेंगे तो पता चलेगा कि उन्होंने हिन्दी का कितना अच्छा और सही प्रयोग किया

गया है। शरतचन्द्र चतर्ज़ी के 'बड़ी बहु', 'परिणिता', 'देवदास', 'बन्दिनी' जैसे उपन्यासों पर बिमल राय फिल्में बना रहे थे। उन्होंने भी अपने फिल्मों की भाषा हिन्दी ही चुनी थी। प्रेमचन्द भी अपनी कहानियाँ लेकर मुम्बई आए। उनकी एक कहानी पर निर्देशक ने फिल्म बनाई लेकिन इसमें इतने बदलाव किए कि प्रेमचन्द ने यहाँ तक कह दिया कि 'यह तो प्रेमचन्द की हत्या है' । तत्पश्चात् वे मुम्बई छोड़कर चले गए । दिलीप कुमार, बलराज़ सहानी, नूतन जैसे कलाकार भी 'हिन्दी' भाषा की गहराई से जुड़े थे । उस वक्त फिल्मों में हिन्दी को लेकर काई खतरा नहीं था क्योंकि भाषा की शुध्दता का आग्रह फिल्म निर्देशकों के साथ कलाकार भी किया करते थे । समय-समय पर अमृतलाल नागर, नीरज, शरद जोशी, फणिश्वर नाथ 'रेणु' आदि साहित्यकार फिल्म जगत् से जुड़े । देव आनन्द के लिए नीरज़ गीत लिखते थे । शरद जोशी ने फिल्मों के लिए संवाद लिखे हैं । रेणु की कहानी पर 'तीसरी कसम' जैसी अच्छी फिल्म बनी है । अचला नागर ने 'बागवान' जैसी फिल्म लिखी । राजेन्द्र यादव के 'सारा आकाश' पर फिल्म बनी । मन्नु भण्ड़ारी की 'अच्छा, यही सच है' कहानी पर 'रजनीगन्ध' फिल्म बनी । लेकिन आप देखेंगे सत्तर-अस्सी के दशक में फिल्मों से जुड़नेवाले साहित्यकारों ने 'फिल्मों के लिए काम करना है ।' ऐसा सोचकर अपनी भाषा में कभी परिवर्तन नहीं किया । न फिल्म निर्देशकों ने वैसा आग्रह किया, न ही कलाकारों ने । बल्कि उस दौर में ऊर्दू-मिश्रित हिन्दी फिल्मों की भाषा बन रही थी । आशा पारेख जैसी कलाकार जिन्हें अँग्रेज़ी ज्यादा बोलने की आदत थी, उन्होंने एक ऊर्दू अध्यापक नियुक्त किया था ताकि वे अपनी जुबान को सुधार सकें । श्याम बेनेगल जैसे फिल्म निर्देशकों ने सिनेमा की भाषा और हिन्दी के उच्चारणों की स्पष्टता पर ध्यान दिया है। पं. सत्यदेव दुबे इतने मँझे हुए कलाकार थे कि भाषा की स्पष्टता पर वे अपनी बात मनवाकर ही छोड़ते थे । 'मण्ड़ी', 'जूनून', 'निशान्त', 'अंकुर', 'सारांश' जैसी फिल्में इस बात का एहसास दिलाती हैं । भाषा की शुध्दता के लिए फिल्म निर्देशकों, कलाकारों एवं लेखकों ने कोई समझौता नहीं किया । बीसवीं सदी ने नौवे दशक में भाषा पर वैसे तो बहुत कम मात्रा में ध्यान दिया गया है। लेकिन बी आर चोपड़ा द्वारा निर्देशित धारावाहिका 'महाभारत' में डा. राही मासुम रज़ा के संवाद भुलाए नहीं भूलते । रामानन्द सागर द्वारा निर्देशित धारावाहिका 'रामायण' में भी भाषा की शुध्दता पर जोर दिया गया है । गुलशन नन्दा की ड्डतियों पर जो फिल्में बनाई गईं, उनमें 'शर्मीली', 'नया दौर' की भाषा बहुत प्रभावित करती है ।

हृषीकेश मुखर्ज़ी क 'चुपके-चुपके', 'खट्टा-मींठा', 'गोलमाल', 'आनन्द', 'मिली' जैसी फिल्में अच्छी तथा बेहतर हिन्दी प्रयोग के उदाहरण मानी जा सकती हैं और इन फिल्मों में सामाजिक सरोकार भी देखा गया है । सन् २००० ई. के बाद फिल्मों की भाषा और गीतों का स्तर बहुत निम्न होता हुआ नजर आता है । जहाँ शैलेन्द्र ने लिखा- 'कोई न रोको दिल की उड़ान को, दिल तो चला', वहीं सिनेमा में आज अमिताभ भट्टाचार्य लिखते हैं- 'दिल उल्लू का पट्ठा है, दिल सौ-सौ का छुट्टा है, दिल अक़बर का पोता है' । भाषा में यह फ़क़ न केवल विचारों के परिवर्तन को दर्शाता है बल्कि भाषा के स्तरिय फ़क़ को भी बताता है । गीतों की भाषा फुहड़ हो गई है । 'मुन्नाभाई एमबीबीएस' जैसी फिल्मों ने भाषा के स्तर को पूरी तरह निम्न किया है । सन् २०१७ ई की फिल्म 'तुम्हारी सुलु' की नायिका सुलु ने एक भी संवाद शुध्द हिन्दी में नहीं बोला है । सन् २०१२ की फिल्म 'गँग आफ वासेपुर' ने भाषा के स्तर की सारी मर्यादाएँ लाँघ दी हैं । 'अढ़ाई रूपएवाली रण्ड़ी' यह लिखा, यह भाषा आज के सिनेमा की वास्तविकता को बताती हैं । गुलज़ार तथा जावेद अख़्तरजी ने अपने गितो की माध्यम से भाषा के सौंन्दर्य को बताने का प्रयास किया है ।फिर भी जावेद जी ने जहाँ 'पंच्छी', नदीयाँ, पवन के झोंके । कोई सरहद ना इन्हें रोके।' वहीं वे 'लेटस द पार्टि टुनाईट' जैस पंक्ति भी लिख पाएँगे इस पर आश्चर्य लगता है । जब जावेद अख़्तर जी से यह पूछा गया कि '' 'आप गँग आफ वासेपुर' की भाषा को लेकर क्या प्रतिक्रिया देंगे?'' तो प्रतिक्रिया के रूप में ''क्या आप रोज के जीवन में गालियों का प्रयोग नहीं करते? मैं व्यक्तिगत रूप से ऐसी भाषा न बोलता हूँ, न लिखता हूँ । फिर रोज़मर्रा गालियों का प्रयोग करते हैं या नहीं?'' ऐसा कहकर जावेद जी उस भाषा की पैरवी नहीं कर सकते । लेखक द्वारा इस प्रकार की भाषा की स्तरता पर टिपण्णी से दाँतों तले उँगलियाँ दब जाती हैं । निश्चित ही जिस फिल्म जगत् तथा बॉलिवूड ने अनपढ़ व्यक्ति तक

भी जिस हिन्दी भाषा को पहुँचाने का काम किया है, उसी ने भाषा की शुध्दता को लेकर लापरवाही भरा परिवेश दिखलाने काम किया है । लेखक अपनी भाषा में स्तरिय दर्ज़ा रखने की आजीवन कोशिश करता है क्योंकि भले ही उसके लेखन का ग्राफ ऊपर न जाएँ लेकिन वह उसे नीचे नहीं लाता । परन्तु सिनेमा की भाषा में यह चित्र बहुत ही कम मात्रा में देखने को मिलता है ।

संदर्भ - सूची :

१) भारतीय सिनेमा का अंतःकरण - विनोद दास
२) सिनेमा का सच - जयप्रकाश चौकसे
३) सिनेमा से संवाद - विष्णु खरे
४) हिंदी भाषा - अमृतलाल
५) हिंदी भाषा शिक्षण - योगेन्द्र जीत

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com